खारा पानी

जयश्री रॉय

खारा पानी

सागर के धूसर नील पानी में साँझ का सूरज डूब गया। साथ में दया का दिल भी - हे देवा! आज क्या मुँह लेकर घर जाऊँगा! रूप आस लगाकर बैठी होगी... हथेली में अपना पूरा मन बाँधे उसने आकाश को देखा - कुछ जतन करो भगवन! ऐसे तो गुजर नहीं होगी।

https://www.hindiadda.com/khara-pani-jayashree-roy/

सात दिनों से दरिया का पानी लिसरा पड़ा है - काले-काले तेल के चकत्तों से भरा हुआ... कहीं दूर बीच समंदर में तेल का जहाज डूबा है। हजारों लीटर तेल हर क्षण पानी में रिस रहा है, लहरों पर तैरकर किनारे तक पहुँच रहा है, जल के जीव मर रहे हैं। हर तरफ हाहाकार मचा है। बड़े जहाजवालों को परेशानी नहीं। वे दरिया में दूर निकलकर मछली पकड़ लाएँगे। मगर उन जैसों का क्या? छोटी-सी नाव उसकी, वहशी लहरों की चपेट में आकर चिंदी-चिंदी हो जाएगी। वह अपनी औंधी पड़ी नाव को सूनी आँखों से देखता है फिर पाँव पर लहराते दरिया को - जरा तू ही सिमटकर छोटा हो जा, मेरी नाव तुझे नाप ले... दो बित्ते की नाव और चार बित्ते का सागर... बोल, होगा...? वह उम्मीद से भरकर पानी को निहारता है और फिर एकदम नाउम्मीद हो जाता है। लहरों पर कालिख का चमकता हुआ वरक चढ़ा है। रेत पर मरती हुई मछलियों की तड़प बिखरी पड़ी है। दूर एक पक्षी अपने तेल लिथड़े पंखों से उड़ने के प्रयास में बार-बार छटपटा रहा है।

दया के अंदर उदासी के गहरे बादल उमड़ते हैं। नहीं, अब कुछ न हो सकेगा। अपने थके कदमों से वह उठकर घर की ओर चल पड़ता है - एक कदम आगे तो दो कदम पीछे। पीछे समंदर की बोझिल लहरें उसाँसें लेती-सी किनारे पड़ धीमें पाँव आतीं, लौटती हैं। तेल के मैले जजीरों ने उसकी गति बाँध दी है, देह में विष की पुडिया घोल दी है। वह जीए तो कैसे। दया उसके सवाल सुनता है और अपना भूल-भूल जाता है।

समंदर का दुख दया का दुख है। वह उसका सगा है, नाते का है। उसकी नसों में दरिया की गंध बँधी है, नमक है, उसका सोंधा स्वाद है। वह जानता है, उसके लहू का रंग लाल नहीं, गहरा नीला है - इसी दरिया की तरह नीला! वह चलते हुए ग्राम देवता के थान के पास रुकता है। एकमन से प्रार्थना करता है - देवा! दरिया का रोग दूर कर, उसे फिर से जगा दे, जिंदा कर दे... तेरी बेदी पर हर दिन घी के दीए जलाऊँगा, रक्त चंपा की माला चढ़ाऊँगा... हम गरीबों की भक्ति का वास्ता, लाज रख महाराज...

ग्राम देवता के थान पर माथा टेककर दया बाहर निकला तो उसका हृदय थोड़ा शांत था। आखिर उनके माथे पर उनके पितरों, देवचर, रावलनाथजी के हाथ हैं। एकदम तो बह जाने नहीं देंगे। कुछ न कुछ तो होगा, आज नहीं तो कल।

जब वह बोझिल कदमों से घर पहुँचा तो रूप को अपने लिए इंतजार करते हुए पाया। वह आँगन में तुलसी चौरे के पास दीया बाले बैठी थी - सज-धज के। शायद कहीं जाना था उसे। बहुत सुंदर लग रही थी - पूनम के चाँद की तरह। माथे पर आधे चाँद की बिंदी, लाल नौवारी साड़ी, सोने का मंगलसूत्र, हरे काँच की चूड़ियाँ। दया उसे निष्पलक

देखता रह गया। गभर्वती होकर उसका लावण्य दिन-दिन बढ रहा है। ऐसे समय में उसे और सुख, जतन देने की दरकार है। दया के मुँह से अनायास आह फिसल जाती है। उसकी आहट पाकर रूप चौंक कर उठ आती है - कितनी देर लगा दी। आज मुझे कलशी फुगड़ी में जाना है, याद नहीं? पूरे गाँव की सुहागनें जुट रही हैं भूमिका देवी के मंदिर में। नीलू की मौसी चार बार हाँक मारकर गई है। 'अभी आई, अभी आई' करके तबसे टाल रही हूँ। चलो, तुम्हें खाना परोस दूँ। अब और नहीं रुक सकती।

दया चुपचाप आसन पर बैठ जाता है। आज नहाने का भी मन नहीं। आँगन के एक कोने में कंडे की नीली आँच पर ताँबे की बड़ी गगरी में नहाने का पानी गरम हो रहा है। काँसे की बड़ी किनारी टूटी थाल पर नाशनी की काली, मोटी, अनगढ रोटियाँ और सूखी नारियल की चटनी। दया चुपचाप खाता है। आज कोई हील-हुज्जत या माँग नहीं। अच्छे बच्चे की तरह गस्सा तोड़ रहा है, कौर निगल रहा है। उसे देख-देखकर रूप का हृदय टूट रहा है। हाय री मजबूरी! जो दया कभी मछली के बिना खाना मुँह से नहीं लगाता था, आज कैसा चुपचाप रोटी, चटनी खा रहा है। दया जानता है, रूप की आँखें उसी पर लगी है, इसलिए एक बार भी नजरें नहीं उठाता। सर झुकाकर अपने सूखे निवालों से जुझता रहता है। रूप के घर से निकलकर जाने के बाद ही वह उठकर हाथ धोता है और फिर गोबर लीपे आँगन में चाँपा के फूलते पेड़ के पास चटाई बिछाकर लेट जाता है।

रात रानी और चंपा की मीठी गंध से हवा बोझिल है। आकाश के झक, नील सीने पर पूनम का पूरा चाँद फटा पड़ रहा है लगता है, गाँव के मंदिर में औरतों की फुगड़ी शुरू हो गई है। उनके समवेत स्वर में गाने की आवाज सुनाई पड़ रही है। आज ये औरतें भूमिका देवी तथा वन देवी की स्तुति में सारी रात नाचेंगी, गाएँगी। अपनी चिंता के गहरे भँवर में डूबता-उतराता न जाने कब दया को नींद आ गई थी।

भोर रात को रूप फुगड़ी से लौटकर उसके बगल में लेटी तो उसकी नींद उचट गई। उस समय पूरब में सुपारी के जंगल के ऊपर आकाश का रंग गहरा काशनी हो रहा था। ठंडी बहती भोर की हवा में कहीं आसपास रातभर झरते हरसिंगार की बासी-उनींदी गंध थी। दूर दरिया के गर्जन में जल पक्षियों का उदास शोर घुला हुआ था। दया का मन अनचन कर उठा। समंदर रो रहा है, धरती और आकाश भी। सबको उसकी जरूरत है जैसे। वह बिस्तर से उठकर दरिया की और चल देता है। रास्ते में माधव और अंकुश भी मिलते हैं। सबकी आँखों में जगार है, सबके चेहरे पर चिंता। भविष्य जब अधर पर लटक रहा हो, वर्तमान में कौन संतुष्ट रहेगा। सबका भगवान ये दरिया है और अब

यह दरिया ही बीमार पड़ गया है। नील देह पर कालिख पुती है, लहर-लहर हल्कान। हुआ जा रहा है।

सब तट पर खड़े हैं और सोच रहे हैं। इस सोच का कुल-किनारा नहीं। बाहर का समंदर अंदर पसर गया है और वहाँ बस गहरी डूब - टूटी, हारी नाव की डूब... कहाँ ठौर बाँधे, लहरों पर टिके हैं जब जमीन के पाँव! सब एक-दूसरे का मुँह ताकते हैं, ढाँढ़स तलाशते हैं - साथी, हल कहाँ है? सहारा कौन... काकुलो आगे बढ़ता है, खुद को तसल्ली देने के लिए दूसरों से कहता है - अब कुछ न कुछ तो होकर रहेगा। कल समाचार में कह रहे थे। नेताजी भी कहकर गए...

'क्या होगा और कब होगा!' मंगेश का सर भन्नाया हुआ है। चार दिनों से घर में अन्न का दाना नहीं, बच्चे बिलख रहे हैं। 'किसको पड़ी है हमारी। हजार झंडे, हजार पार्टियाँ। कोई इसे कोस रहा है, कोई उसे कोस रहा है। बीच में मर रहे हैं हम। कोई ईमान से बताए, किसके राज में हम सुख से रहें? अगर किसी का भला हुआ तो बस इन्हीं नेताओं का। गरीब की चिता की आग पर रोटियाँ सेंकनेवाले गिद्ध... मंगेश की आँखों में खून था, आँसू सारे कबके बह चुके थे। तान ने उसे बढ़कर सँभाला, वर्ना न जाने वह किसकी जान ले लेता।

रामा अपना सर पकड़े अब तक चुप बैठा था। मंगेश की बातें सुनकर उसके खून में भी आग लग गई। काँपते हुए उठा और गुर्राया - अरे, हमने कब इनसे सुख-सुविधाएँ माँगी थी। कुदरत ने हमें जो दिया था, हम उसी में संतुष्ट थे। सर पर आकाश था, नीचे धरती का बिछौना... अपने जल, जंगल, जमीन से हमें सब कुछ मिल जाता था - दो वक्त की रोटी, नींद और सुकून... मगर अब तो सब छिन गया। न गरीब के सर पर आकाश रहा, न पाँव के नीचे जमीन... आजादी, उन्नति, आधुनिकता के नाम पर सब झपट ले गए!

उस रात पंचायत घर के आँगन में भी देर रात तक बैठकी होती रही। अभाव, असुविधा और भूख ने सभी को बेहाल कर रखा था, उत्तेजित भी। एक आर-पार की लड़ाई के लिए सबकी मुट्ठियाँ रह-रहकर बँध रही थी, जबड़े कस रहे थे। हवा में चिनगारी के कण तैर रहे थे, बस एक आगाज की दरकार थी। रघु के तेवर सबसे उग्र थे, जवान खून था, पूरे उबाल पर - 'कोई कहेगा दद्दा, ये हमारा वही गोवा है? कभी यहाँ हरियाली, समंदर और चारों तरफ खुशहाली थी। और अब...? - सिर्फ मरती हुई मछलियाँ और कंगाल होता दरिया... टूटी हुई नाव की तरह है हाल हमारा, न पानी में उतर सकते हैं, न किनारे पर टिक सकते हैं; हमारा तो दोनों कूल गया!'

'रोज नए-नए कानून बनाकर ये हमसे हमारी जमीन और दरिया हथियाने में लगे हैं। ऐसे तो हम जल्दी ही बेदखल हो जाएँगे।' धीरे-धीरे अपनी बात कहते हुए नरेन की आवाज में गुस्से से ज्यादा चिंता थी। अगले ही महीने उसकी छोटी बहन की शादी होनी तय हुई थी।

'हो क्या जाएँगे पूत, समझो हो गए। कल ही कलंगुट के मछवारों को अपना गाँव खाली करके जाने की सरकारी नोटिस मिली है। कहते हैं, समंदर के इतने पास नहीं रह सकते, अब कहो, समंदर ही हमारा सदियों का पड़ोसी, मछली को भी पानी से खतरा होता है...!'

गोकुल की बात सुनकर सबके चेहरे का रंग उतर गया था। दरिया तो उनके नसों में बहता हैं, वे दरिया से दूर जाकर कैसे जिएँगे! काँच के बक्से में कभी दरिया बँधता है, कि मछली ही जीती है। कभी पाँच सितारा होटल के नाम से जगह घेरी जा रही है तो कभी कालोनियाँ जमीन निगल रही है। अब स्थानीय लोग कहाँ जाएँ। जहाँ पाँव रखो, लोग आँखें तरेरते आ जाते हैं। कुदरत का तोहफा ये कैसे इस तरह से बेचकर खा सकते हैं? अंधेर है... अनपढ़ लोगों के दिमाग में सवाल तो उठते हैं, मगर जवाब नहीं सूझते।

देर रात गए ऐसे ही अनुत्तरित प्रश्नों का गट्ठर अपने सर पर उठाए जब दया अपने घर पहुँचा, चाँद दरिया में उतरकर पूरा घुल चुका था। गोरे होते आकाश के नीचे समंदर की लहरों में उसका केबल हल्का-सा रेश बचा था, अबरक की चमकीली बूँदों की तरह झिलमिल-झिलमिल...

दया आकर बगल में लेटा तो रूप ने अपनी आँखें बंद की। अब तक उसी के इंतजार में जाग रही थी। जब तक दया घर नहीं लौट आता, उसे चैन नहीं मिलता। आजकल दिन ही ऐसे पड़े हैं। चारों तरफ अशांति और झमेला। रूप को चिंता होती है। दया भावुक है, जोश में कुछ कर-करा न बैठे। उसे अपने पहले बच्चे के जन्म के लिए माँ के घर जाना था, मगर यहाँ की हालत को देखते हुए वह अब तक बात टालती आ रही थी। वह अकेली पड़ी सोचती और सोचती है। न जाने ये दिन कब बदलेंगे। कब पहले जैसा जीवन होगा - निश्चिंत और खुशियों से भरा ।

उसे वे दिन याद आते हैं जब उन दो जनों का छोटा-सा परिवार हर तरह से खुशहाल था। दया रात-रातभर नाव लेकर मछली पकड़ने के लिए दरिया में रहता था। बारिश के बाद नारियल पूर्णिमा में समंदर की पूजा कर मछेरे अपनी-अपनी नाव लेकर पानी में उतर जाते थे। यह मछली का मौसम होता था। खूब मछलियाँ मिलती थी। घर में पैसा

आता था। दो साल पहले बारिश के बाद जब दया ने मछली बेचकर बहुत पैसा कमाया था, उसके लिए दो तोले का बाजूबंद खरीद लाया था।

सुबह दरिया से लौटकर दया नींद पूरी करने के लिए सो जाता था। उसे रातभर जागना जो पड़ता था। तब रूप मछली की टोकरी लेकर बाजार में जा बैठती थी। दोपहर को घर लौटकर दया को जगाती थी, फिर दोनों साथ खाना खाते थे। धीरे-धीरे आकाश में फैलती रोशनी में सोते हुए दया के चेहरे की तरफ देखते हुए रूप को बीते हुए कल की न जाने ऐसी कितनी बातें याद आती चली गई थीं -

कुछ साल पहले यही मार्च का महीना - कपास की खुलती गाँठों और हवा में बेहिसाब उड़ते आवारा फूलों के दिन... गहरी उमस में पसीना और नींद से बोझिल तन-मन! कोंकण समुद्री पट्टी का आम मौसम, हमेशा की तरह... उस दिन भी दया दरिया से सुबह-सुबह लौटकर सीधे बाजार गया था।

तीसरे पहर धूप में जलकर एकदम ताँबा बनकर जब वह घर लौटा, सूरज नारियल के माथे से उतरकर खाड़ी की तरफ फिसला जा रहा था। रूप रसोई में उसके लिए हर दिन की तरह चूल्हे की आग सँभाले बैठी-बैठी ऊँघ रही थी। दया ने आँगन के चहबच्चे के पास हाथ-पैर धोते हुए उसके लिए हाँक लगाई तो वह आँखों पर पानी छपककर बाहर निकल आई - बड़ी देर कर दी आज! 'हाँ, खाना परोस।' दया के पेट में आग पड़ी थी। ज्यादा बोलने का मन नहीं था । पति के हाव-भाव देखकर रूप ने बात आगे नहीं बढ़ाई, चुपचाप खाना परोस लाई - लाल, मोटे चाबल के स्तूप पर नारियल की झीगा करी, खूब सारी हरी मिर्ची और कोकम डली हुई। साथ में गिलास भर सोलकड़ी। कोकम के गुलाबी पानी पर नारियल का दूध तैर आया था। गिलास को गोल-गोल घुमाकर पेय को घोलते हुए दया ने एक ही घूँट में आधा गिलास खाली कर दिया था। खट्टा, तीखा पानी खाली पेट में आग की लकीर की तरह उतर गया था। डकार के साथ लहसुन की गंध को महसूसते हुए उसने रूप को अकारण घूरा था। माथे से चूकर पसीने की बूँदें उसके कान के पीछे उतर रही थीं - आज तूने सूखी मछली नहीं भूनी, मैंने कहा था न...

हाँ बाबा! वह भूल सकती हूँ। रूप ने सूखी मछली का संबल आगे बढ़ाया था, अल्मुनियम की कटोरी भरकर - जितना चाहे मनभर खा लो। कल मंगलबार है। मछली नहीं पकेगी।

'यानी वही तेरी दाल और अचार... दया ने मुँह बनाया था।

'हाँ, और क्या? रूप के होठों पर हँसी काँप रही थी।

'तो फिर कच्चे केले की भाजी बना देना।'

'सो दूँगी।'

'खूब सारी हरी मिर्च और कसा हुआ नारियल डालकर!'

'हाँ बाबा...'

'सरसों के साथ करी पत्ते का छौंक लगाना न भूलना!

'नहीं भूलूँगी, बस? चम्मच से नारियल की सूखी चटनी उसकी थाल में डालते हुए अब रूप ने आँखें तरेरी थी। दया मुस्कराकर खाने लगा था - रुक, रात को मजा चखाता हूँ। बहुत मस्ती चढ़ी है तुझे। चल, अब मटकी से उर्राक (काजू की शराब) डालकर ला। ठंडा हुआ होगा।'

'भट्टी से तो चढ़ाकर ही आए हो, और कितनी पियोगे! हल्के गुस्से में रूप के होंठ सुज गए थे। ऐसे में वह बहुत प्यारी दिखती है। दया ने उसे आँख भर देखा था - 'चल मेरी सानी, थोड़ी और पिला दे। देख तो कितनी गर्मी पड़ रही है। समंदर भी सूखता जा रहा है, फिर मैं तो इनसान ठहरा।'

'ज्यादा बातें मत बना, समंदर तेरी तरह बेवड़ा नहीं है।'

खाना खकर दया आँगन में उतरकर कुल्ला कर आया था। 'जरा-सा लेटूँगा। नंदिनी को नीचेवाले गोठे में बाँधकर आ। सुबह से रँभा रही है। गर्मी में आई है। सोने नहीं देगी।' भूना हुआ सौंफ फाँकते हुए वह चटाई पर जा लेटा था। गाय को दूसरी जगह बाँधकर रूप हाथ पंखा लिए उसके बगल में आ बैठी थी - अच्छा दया, मोर्चे का क्या हुआ?

'होना क्या था, दया की पलकें बोझिल हो रही थी - बड़ी-बड़ी कंपनियों के जहाज हैं दरिया में। उन लोगों ने खूब खिलाया-पिलाया है मंत्रियों को। हम गरीब मछेरों के जाल उनसे टूटते-फूटते हैं तो परवाह किसे है। राजनेताओं के अपने स्वार्थ है, व्यापारियों के अपने। बीच में घुन की तरह पिसते हैं हम गरीब।

'तो क्या कुछ भी न हो सकेगा?' रूप की आवाज में चिंता थी। आखिर मछली पकड़ना उनकी आजीविका का एकमात्र साधन था। आए दिन समंदर में मछली पकड़नेवाले बड़े-बड़े जहाज उतर रहे थे। उनके रास्ते में आकर गरीब मछेरों के छोटे जाल टूटते रहते थे। पिछले साल मुन्ना उनके जाल की ओर बढ़ते हुए जहाजों को सावधान करने के लिए पानी में उतरा तो टूटे हुए जाल की लपेट में आकर मारा गया।

गुस्से में आई भीड़ ने राज्य सभा भवन के सामने प्रदर्शन किया। बहुत हंगामा हुआ। पुलिस की गोली में एक की जान चली गई। राजनीतिक पार्टियाँ झूठी हमदर्दी का मुखौटा ओढ़े अपना-अपना झंडा, बैनर लेकर हाजिर हो गए। खूब रोटी सेंकी गई गरीब की चिता पर। मगर हुआ कुछ भी नहीं। आखिर सबने मिलकर चंदा करके मारे जानेवाले की शहादत की याद में चौक पर एक मूर्ति की स्थापना कर दी - मूर्ति के एक हाथ में चप्पू, दूसरे कंधे पर जाल। साल में एक बार उसके शहादत दिवस पर उसकी मूर्ति साफ-सूफ करके उस पर माला चढ़ा दी जाती है। भाषण-वाषण भी होता है। इसके बाद बाकि पूरे साल उसके नीचे बैठकर उसकी पागल, बूढ़ी माँ कटोरा लेकर भीख माँगती है। ऊपर मूर्ति के माथे, कंधे पर पक्षी उड़ते-बैठते बीट करते रहते हैं। यही तो है शहीदों का हाल यहाँ पर!

रूप को चिंता होती है। दया को भी होती होगी। मगर वह मुँह से कुछ कहता नहीं। रूप पेट से है। उसे यह सब बताकर परेशान करना ठीक नहीं। बाहर की बातें घर में लाकर भी क्या होगा। मगर घर में बैठकर भी रूप को गंध आती है। हवा में बारूद है, धुआँ भी। समंदर में आग लगी है, मछलियाँ जल रही हैं। बीमार पड़ा है दरिया, छीज रहा है निरंतर... 'हे देवा! रूप मन्नत माँगकर महालसा देवी के मंदिर में मोगरे की वेणी चढ़ा आती है, तुलसी की माला भी। शनिवार को हनुमानजी के पाँव में तेल ढालती है - शनि की कोप दृष्टि से बचाना प्रभु!

उस दिन दया की मनःस्थिति अजीब थी। उसे पिछवाड़े की तरफ पड़ने वाली पहाड़ी पर खींच ले गया था। सामने नजर पड़ते ही रूप का दिल धक से रह गया था। आगे की पहाड़ियाँ एकदम नंगी खड़ी थीं। पूरी तरह उघड़ी, खुली हुई। लाल मिट्टी घाव की तरह दगदगा रही थी जैसे। चारों तरफ दैत्यकार मशीनों का शोर मचा था। जंगल तहस-नहस किए जा रहे थे। 'अरे, अब ये क्या हो रहा है! रूप को सचमुच रोना आ गया था।

'जंगल साफ किए जा रहे हैं। यहाँ बहुत बड़ी कंपनी के बँगले और कालोनियाँ बनेंगी।' कहते हुए दया की आवाज में भी अजीब डूब थी। रूप ने अपनी जलती पलकों को भींचा था। कभी ठीक उन्हीं पहाड़ियों की तलहटी में वसंत के मौसम में उन्होंने प्रेम का पहला फल चखा था। उन दिनों पहली बार रूप अपनी भाभी के इस गाँव में घूमने आई थी।

तब उसकी उम्र सोलह साल रही होगी... फिर यही मार्च का महीना, हमेशा की तरह उदास और खूबसूरत! झरते पत्तों और फूलते मंजरी की तीखी-तुर्श गंध से बोझिल। जंगलों में जगह-जगह लगी शराब की भट्टियाँ और लाल, सुनहरे काजू के फलों से

दहकते हुए जंगलों का अंतहीन विस्तार। निविड़ वन के सीने में पलाश, सेमल की आग अलग से। अबीर से रंगा खालिस जादू का मौसम... देह और मन में वासना का सुर्ख पराग, नीली आँच! समंदर में भी आदिम चाहना का गहर उन्माद...

दया बाजार मे मछली बेचकर लौट रहा था। आज सीपियों के अच्छे दाम मिले थे। भर दुपहरी में सुपारी के गहरे हरे जंगल में रूप को हाथ में चंपा का फूल लिए खड़ी देखा तो देखता ही रह गया। जैसे समंदर, धूप और हवा से गूँथकर बनी थी वह - सुंदर, मुलायम और चमकीली - बहती हुई लहर की तरह! घर में ले जाने के लिए लाई हुई मछली की टोकरी उसने उतारकर जमीन पर रख दी थी। आई घर पर उसकी राह तक रही होगी, उसे ख्याल नहीं रहा। तेज धूप के एक छोटे-से दायरे में सूरजमुखी की तरह दपदपाती हुई रूप के लावण्य में डूबा न जाने वह कबतक खड़ा रह गया था, बिना कुछ कहे। साथ में रूप भी। वसंत और प्रेम का टोना दोनों पर एक साथ चला था। दया का साँवला चमकता चेहरा और जवान मछलियों से भरा कठोर पत्थर जैसा शरीर रूप के कच्चे मन में एकदम से उतर गया था।

दया ने बढ़कर उसकी कलाई पकड़ी तो वह एक-दो बार कसमसाकर शिथिल पड़ गई। दया सधा मछेरा था, समझ गया - मछली आर-पार बिंध गई हैं। उसने अपना सुनहरा जाल समेटा - उसे खींचकर काजू की महकती झाड़ियों में ले गया। अंदर छिपी हुई चिड़ियाँ चौंककर चहचहाईं, एक बुलबुल का जोड़ा फुर्रs से उड़कर आम के जंगल में खो गया। रूप के अंतर में रोमांच की ऊँची लहरें उठ-उठकर गिरने लगीं, देह बाँस के पत्ते की तरह सिहर गया। उसके नासपुटों में दया की पसीने से भीगी देह की गंध थी - नमकीन, सोंधी, ठीक समंदर की तरह। दया ने उसके कान की लबें चूमते हुए कहा - तू मुझे भा गई है। रूप ने अपने होठ काट लिए। कुछ कह न सकी। दिल बेतरह धड़क जो रहा था।

'क्या कहती है, मेरा घर बसाएगी? दया ने कुछ और हिम्मत की।

'नहीं!' रूप ने उसके उद्दंड हाथ रोके।

'क्यों?' दया को गुस्सा आ गया - 'मैं नहीं जँचता?'

'वो बात नहीं।' रूप की आँखों, होंठों पर रुलाई के गहरे आसार।

'तो फिर?' दया के हाथ फिर बेसब्र।

'ये देख।' रूप ने अपनी कलाइयाँ चमकाईं - मेरी सगाई हो गई है, दामोजी के साथ। शहर के आढ़त में काम करता है... उसकी कुहनी तक चढ़ी हुई हरे काँच की चूड़ियाँ एकसाथ खनखना उठीं। दया को लगा, वे उस पर हँस रही हैं। दो क्षण उन्हें घूरकर उसने जोर से उन्हें आपस में टकरा दी थी। सारी चूड़ियाँ एकसाथ टूटकर छनछनाते हुए बिखर गई थीं। रूप की कलाई में खून ही खून...

'अरे देवा! ये क्या किया...!' रूप की रुलाई फूट पड़ी - वहिणी क्या कहेगी... और भाऊजी!

दया ने उसके आँसू पोंछे थे - उनसब से मैं निपट लूँगा, बस तेरी हाँ चहिए।

'अब भी पूछता है पागल! रूप की बड़ी-बड़ी आँखों में अब सुहाग की सुर्ख झिलमिल थी।

'सच्ची!' दया उससे एकदम से लिपट गया था। रूप के कुँवारे होंठों पर प्यार का पहला चुंबन! दोनों एकसाथ लरज गए। पास ही समंदर पछाड़ें खा रहा था। ये ज्वार का समय था - दरिया में भी और देह में भी! दया ने रूप के ब्लाउज का बटन टटोला तो रूप ने उसका हाथ झटककर परे कर दिया - नहीं, अभी नहीं...

'काहे?' दया एकदम अबाध्य।

'पाप लगता है, आजी कहती हैं। पहले लगन हो जाने दो।'

'अच्छा! तो फिर चल, वह भी कर लेते हैं...' दया उसे खींचकर सातेरी देवी के मंदिर ले गया था। रूप 'अरे रे' करती रह गई थी। ढलती दुपहरी के इस समय मंदिर एकदम निर्जन पड़ा था। पुजारी पूजा के बाद कपाट भेड़कर जा चुका था। फूल बेचनेवाली औरतें भी अपनी-अपनी डलिया सँभालकर तब तक जा चुकी थीं। गर्भगृह में फैले अगरबत्ती के सुगंधित धुएँ और असीम शांति को महसूस करते हुए रूप ने अपनी आँखें मूँदी थी - ये सब क्या हो रहा है! देवी की काली मूर्ति दीए की सुनहरी पाँत के आलोक में झिलमिला रही थी। जैसे मुस्करा रही हो।

दया ने वहाँ पहुँचते ही देवी के पाँव से चुटकी भर सिंदूर उठाकर उसकी माँग भर दी थी। वह एकदम सन्न रह गई थी। अब दो तुलसी की मालाएँ उठाकर एक उसे थमाते हुए दूसरी उसने उसके गले में डाल दी थी। रूप को चुपचाप खड़ी देखकर उसने उसके हाथ पकड़कर अपने गले में जबरन माला डलवा ली थी - चल, हो गया लगन! रूप हिलक-हिलककर रो पड़ी थी - बाबा हमको जान से मार देंगे दया।

'अब तू मेरी घरवाली है, कोई हाथ लगाकर तो देखे!

एक बार फिर उसे घसीटते हुए दया सुपारी के जंगल में ले गया था। वहाँ एक कोने में नारियल के सूखे पत्तों का ढेर लगा था। अंदर एक छोटी-सी कोठरी थी, जमीन पर पुआल बिछा था।

'यह कुटिया मैंने बनाई है। यहाँ लेटकर मैं रोज सपने देखता था कि एक दिन तू - मेरी जीवन संगिनी - यहाँ आएगी - ठीक इसी तरह! उसने उसे बड़े जतन से पुआल पर लिटा दिया था - अब पाप नहीं लगता न...? रूप ने अपनी पलकें भींचकर न में सर इधर-उधर हिलाया था। मुँह से कुछ नहीं कहा था। दया ने उसके सीने में चेहरा धँसाकर एक गहरी साँस ली थी - तेरी देह से मछली की गंध आती है। मैं तुझे मत्स्यगंधा पुकारूँगा। ठीक?

'और मैं तुझे सागर पुकारूँगी, तेरे शरीर से समंदर की सोंध, नमकीन महक जो आती है...'

दया की उँगलियों के गर्म पोरों में रूप का शरीर किसी रुपहली मछली की तरह काँपकर फिसल गया था। बाहर ज्वार चढ़ा समंदर दूर तक उठ आया था, उसके गर्जन में आदिम चाहना का उन्माद स्पष्ट हो कर अब सुनाई पड़ने लगा था। उफनते पानी में नारियल के पेड़ कई-कई हाथ डूबे सरसरा रहे थे। चारों तरफ लहरों की हरहराहट और समुद्री पक्षियों की चीख छाई हुई थी - गहरी निःस्तब्धता में डूबी हुई चीख! उस दिन दोपहर का सूरज कब लाल होकर अरब सागर के सीने में उतर गया, दोनों को पता ही नहीं चला था। एक पागल दरिया ज्वार के पूरे उन्माद के साथ अपनी मछली की रुपहली देह में उतरकर हमेशा के लिए खो गया था, और वह छोटी-सी मछली अपने सीने में दरिया का अछोर विस्तार समेटकर उसी में डूबकर तर गई थी। सात फेरे में सात जन्मों का फेर था, मगर जब जाल ही मछली की मुक्ति हो जाए और मछली जाल का चिर बंधन, तब किसी बात का गिला कहाँ रह जाता है!

उस साँझ जब वे वहाँ से बाहर निकले थे, पूर्णिमा का सुडौल चाँद पूरब के गहरे रंगे हुए आकाश पर सोने की थाल की तरह जगमगा रहा था। पहाड़ की तलहटी में बसे उनके गाँव में सिगमोत्सव की तैयारियाँ उस दिन जोर-शोर से चल रही थी। उसी में रूप की बहन, जीजा रूप को यहाँ-वहाँ ढूँढ़ते फिर रहे थे। दोपहर को घर से निकली लड़की साँझ ढले भी घर नहीं लौटी थी। चिंता तो होनी ही थी। जब गाँवभर ने दोनों को एकसाथ देखा, सबके माथे पर बल पड़ गए। रूप की माँग में सिंदूर दपदपा रहा था। दया के गले में माला। बहन का चेहरा जहाँ यह सब देखकर उतर गया, जीजा की त्योरियाँ चढ़ गईं।

बहन ने रूप को सँभाला, बहनोई ने दया का गिरेबान पकड़ लिया। चारों तरफ सनसनी फैल गई। पूरा गाँव दो हिस्से में बँट गया। फिर तो लाठियाँ चलीं, सर फूटे, खून की धार बह गई। काफी हंगामे के बाद आखिर पंचायत बैठी। पंचायत का फैसला रूप और दया के हक में ही हुआ। फिर तो सब फिर से एक हो गए। खूब जश्न मनाया गया। रातभर नाच-गाना, खाना-पीना... फेनी की नदी बह गई। सुबह लोग नींद से जागे तो रात के खुमार में कहीं रंज का निशान नहीं था। रूप इस गाँव की बहू थी तो दया उस गाँव का दामाद। दरिया में गहरे हलचल के बाद अब अछोर शांति पसर गई थी।

इसके बाद का जीवन सपने जैसा था दोनों के लिए। समंदर के किनारे बसे इस छोटे-से गाँव में दोनों ने अपना छोटा, सुंदर नीड़ बाँधा था। दया के अपने परिवार में कोई था नहीं। एक चाचा और उसका परिवार पड़ोस में था। दोनों के दिन सुख-चैन से बीत रहे थे। दरिया में मछली थी, आकाश में चाँद और मन में खूब सारा प्यार... और क्या चाहना था उनको? कुछ भी तो नहीं। गर्मी के मौसम में जंगलों में जगह-जगह शराब की भट्टियाँ बैठतीं। रूप अपने पेड़ों से काजू के फल चुन लाती, फिर उन्हें पैरों से कुचलकर उनका रस निकाला जाता। काजू के रस का मीठा नीरा शर्बत... मिट्टी के बर्तनों में दिनों तक रस सड़ाया जाता... हवा उन दिनों काजू की शराब की गंध से बोझिल रहती है। साँस लेकर ही जैसे नशा-सा हो जाता है। दया सुबह-सुबह नारियल के पेड़ से रस उतार लाता था - हल्का मीठा, झागदार... पीकर खुमार चढ जाता था।

फिर न जाने क्या हुआ। धीरे-धीरे हवा बदल गई, मौसम का मिजाज और तेवर बदल गया। गोवा की हरियाली में कालिख घुलने लगी। समंदर में बड़े-बड़े जहाज उतरे, जमीन पर होटल, ईमारतें और कालोनियाँ खड़ी हुई। बाजार अनजाने चेहरों से भर गए। पहले-पहल ये तब्दीलियाँ बहुत सामान्य थीं, मगर जल्दी ही स्पष्ट हो उठीं। हर तरफ इसका असर दिखने लगा और लोग चौंककर बेचैन होने लगे। जमीन घटने लगी, समंदर रीतने लगा और अंत में पानी से ही नहीं, खाने की थालियों से भी मछली गायब होने लगी। सबका माथा ठनका - ये क्या हो रहा है!

इसके बाद बाजार से लोग उठकर घर तक आने लगे, दरवाजे खटखटाने लगे। किसी को जमीन चाहिए तो किसी को पानी। मेहमानों को घर में जगह तो दी जाती है, मगर घर नहीं। अब तो प्रश्न अस्तित्व का था, अस्मिता का था। अपनी विरासत किसी को कैसे सौंप दे! चेहरा खोकर मुखौटे की जिंदगी कैसे जिए!

दया अक्सर रूप से कहता - पैसे के लालच में सब अपनी जमीन बेच रहे हैं। जब कुछ न बचेगा तब लोग रहेंगे कहाँ और खाएँगे क्या? ये पैसा? सरकार को भी अपनी वोट

की राजनीति चलानी है। वोट के लिए सबको यहाँ-वहाँ बसा रहे हैं, उन्हें लाइसेंस दिलवा रहें हैं, वोटर लिस्ट में नाम डलवा रहे हैं। रूप को पहले-पहल ये बातें समझ में नहीं आती थी। हँसकर उड़ा देती थी। एक बार कोई बड़ा व्यापारी उनकी जमीन खरीदने के लिए आया। यहाँ पर होटल बनवाना चाहता था। मुँह माँगी रकम देने तैयार था। मगर दया ने साफ मना कर दिया। रूप को गुस्सा आया। एक टुकड़ा जमीन बेच देने से क्या हो जाता। इतना पैसा मिलनेवाला था। उसकी बात पर दया ने कहा था - हम दरिया की मछलियाँ काँच के बक्सों में बंद होकर नहीं जी सकते रूप। सब कुछ तो लगभग चला गया है। अब अपने इस चाँद, समंदर और हवा का सौदा नहीं कर पाऊँगा... रूप उसका मुँह तकती रह गई थी। पता नहीं आजकल दया को क्या होता जा रहा है। अक्सर परेशान रहता है और गुस्से में भी। बड़बड़ाता रहता है।

उस दिन उसे खींचकर दरिया के पास ले गया था। ऊपर से साँझ की धूप में दरिया का नीला पानी सुनहरा दिख रहा था, जैसे सोना पिघलकर लहरा रहा हो। उसी की तरफ देखते हुए दया ने खोयी-सी आवाज में कहा था, जैसे अपने आप से ही बात कर रहा हो -

याद है रूप, हम कभी इसी समंदर की मछली और वन के पक्षी हुआ करते थे, धरती के फल-फूल भी। एकदम निश्चिंत और मस्त - लहरों पर तैरते हुए, हवा में उड़ते हुए, रंग-रंग में मुस्कराते हुए... तब ये सोच की काली लकीरें कहाँ हुआ करती थी हमारे माथे पर! हम तो चरवाहों की बाँसुरी में ढलकर गूँजते रहते थे वन-वनांतर... रूप, स्वर्ग का एक टुकड़ा थी ये जमीन - समंदर और आकाश के बीच - सुनहरी मछलियों की कौंध और फेनी की मदिर गंध से सराबोर... दया नशे में था, उसकी चढ़ी आँखें, काँपता लहजा बता रहा था। सुनते हुए रूप की पलकों पर मौसम का नया चाँद उतर आया था, उसकी नर्म चमक भी। अक्सर ऐसा ही होता था, अपनी जमीन की बात करते हुए दया नींद और सपनों के बीच कहीं हो जाता था, खुरदरे यथार्थ से दूर, हवा के मुलायम परों पर, खुशी और उजाले की ओर - किसी बहते हुए अनाम गंध की तरह...

रूप उसे देखती है और गहरी साँस लेती है। ये आदमी कब जागेगा! अब वह चाँद रातें कहाँ, दोपहर की तेज धूप है। जीना है तो खुद को बदलना है। समय से पीछे रह गए तो जीवन से भी छुट जाएँगे। अब कुछ मन का, कुछ बेहतर चुनने का विकल्प कहाँ? जो है उसे ही जीवन जीने के योग्य बनाना पड़ेगा। स्वप्नजीवी होकर जीया तो नहीं जाता...

मगर दया क्या करे? उसकी आँखें जो देखती हैं - साहिल पर बिखरी गंदगी - प्लास्टिक की बोतलें, कागज, फलों के छिलके, बीयर के टीन... वह उन्हें एक-एककर

चुनता है - स्वर्ग देखने आते हैं ये सैलानी और उसे नर्क में तब्दील कर चले जाते हैं। लो, एक और जन्नत कचरा पेटी बन गया! खुश हो लो सबलोग... वह निरंतर बड़बड़ाता है। इन दिनों उसे अपने आप से बातें करने की आदत पड़ती जा रही है - कोई सुने न सुने, मैं बोलूँगा, अरे इतना तो कर ही सकता हूँ! रूप अपने ईश्वर को याद करती है, मन ही मन हाथ जोड़ती है - इस आदमी का दिमाग दुरुस्त रहने दो देवा! मेरा और कौन है।

उसकी सोच से अनजान दया अब भी बोल रहा है - ये तेल में लिथड़े पक्षी, मरी हुई मछलियों के बसाते हुए ढेर... असल में ये जीवन के निरंतर मरने, मरते चले जाने के संकेत हैं। मगर कौन समझना चाहता है। सबको अपनी पड़ी है। अपने जीने की जुगाड़ में लोग औरों के लिए मौत का सामान बनते जा रहे हैं। अच्छा, कहो तो रूप, जब ये धरती ही नहीं बचेगी, ये लोग किस जमीन पर अपने सुख के महल बाँधेंगे...? दूसरों के लिए नहीं तो कम से कम अपने बच्चों के लिए ही सोचते। विरासत में उन्हें क्या सौपेंगे - ये बीमार दुनिया? गंदी और कुरूप... उसके अंतर का तहस-नहस उसके चेहरे पर रिस आया था - किसी जलती हुई भट्टी की तरह।

दया की हालत देखकर रूप सोच नहीं पाती, उसे कैसे सांत्वना दे। वह उसका पसीने से तर हाथ पकड़ती है - इतना सोचकर क्या होगा दया, सब ऊपरवाले पर छोड़ दो। 'हाँ, सब तो यही करते आ रहे हैं अब तक - छोड़ दो ऊपरवाले पर, बीचवालों पर। बाकी रह गए हम - समाज के हाशिए पर, तलछट पर - कीड़े-मकौड़े! - रूँदते हुए, पिसते हुए..., अपने खून, पसीने से जिसे सींचते हैं, वह दुनिया हमारी नहीं। उन परजीवियों की है जो हम गरीबों के हाड़-मज्जे पर पनपते हैं, हमारे खून और आँसू पीकर बड़े होते हैं... रक्तबीज की जात!

रूप को इतनी बड़ी-बड़ी बातें समझ में नहीं आती। वह हरी-भरी पहाड़ियों पर घाव- सी दगदगाती हुई जमीन की उघड़ी हुई लाल-भूरी देह देखती है, मशीनों के उकाब-से पंजे और दाँत देखती है। उसे डर लगता है। आकाश में लाल धूल का बवंडर उठता है, घर-दालान पट जाता है। आँगन की तुलसी मुर्झा जाती है। वह साफ करते-करते परेशान। खदानों की सुरंगे चारों तरफ ऑक्टोपस की तरह फैली है। हर तरफ धमाके हो रहे हैं - निरंतर... धीरे-धीरे धरती की कोख खोखली हो रही है और उनका सीना भर रहा है, फेफड़ा सूज रहा है - धूल से, मिट्टी से और धुआँ से। दैत्य की तरह गरजते हुए मशीनों से उसका जी घबराता है, पेट का बच्चा उत्तेजित होता है, काँपता, लरजता है। वह खुद को सँभाले या उसे शांत करे।

दया अलग परेशान। समंदर में मछली नहीं। बड़े-बड़े जहाज अपना जाल डालकर सारी अच्छी मछलियाँ छानकर ले जाते हैं। अमीर देश गहरे समंदर से ही उन्हें खरीद भी लेते हैं। स्थानीय बाजार में बचा-खुचा माल ही पहुँचता है। ऊपर से ये सैलानियों की भीड़, होटलों की कतार... सब कुछ वहीं खप जाता है। यहाँ के लोग क्या खाएँ! चावल और मछली ही तो उनका मुख्य भोजन है। पर्यटन ने यहाँ के बाजार में आग लगा दी है। महँगाई अपने चरम पर, किसी चीज में हाथ नहीं दिया जाता।

बड़े व्यापारी कोल्ड स्टोरेज में अपनी मछली जमा करके सही समय पर ऊँची दाम से बेचते हैं। मगर दया जैसे छोटे मछेरे कहाँ जाएँ? उन्हें तो कोई सुविधा उपलब्ध नहीं। माल के नष्ट होने के डर से औने-पौने दाम में सब बेच आना पड़ता है।

विदेसी रुपयों से संपन्नता आती है, मगर किस कीमत पर? किसके लिए? जाहिर है, उनके लिए तो नहीं। खोखली जमीन पर खड़ा है ये हवा महल, एक दिन गिरेगा, न जाने किस-किस पर! रूप उसे समझाती है और खुद छिपकर रोती है - देवा! कैसी दुनिया में आएगा हमारा बच्चा! क्या साफ हवा, पानी और दरिया सिर्फ उनके किस्से-कहानियों में ही रह जाएँगे?

दोनों साँझ ढले समंदर की छत पर खड़े होकर चाँद को तकते हैं। चाँद की सुनहरी देह पर स्याह धब्बे हैं, तारे एक-एककर सँवला रहे है। दया को अपने बचन याद आते हैं जो उसने कभी रूप को दिए थे - प्रेम के किसी गहरे, आवेग भरे क्षण में - मैं तुझे तेरे मन का घर दूँगा - धन-धान्य से पूर्ण, ताजी मछली और नीला समंदर - एक पूरे चाँद के साथ! अपने सुख का नीड़ बाँधना, मेरे प्यार से, बच्चों की किलकारियों से। रसोई की गंध और तुलसी के पौधे से। आँगन में रँगोली और दरवाजे पर वंदनवार। - जमीन पर स्वर्ग रचना...

एक बार उसी ने तो कहा था, न जाने किस उछाह और अभिमान में - रूप, मैं तेरे लिए ताजमहल बाँधूँगा। सुनकर खूब हँसी थी रूप - अब कहाँ गया वह अभिमान, ताजमहल... दया अपने खंडहर होते जीवन को देखता है। उसकी साँसें लंबी होती जाती है। तो क्या अब कल का इतिहास उसके मुमताज के बेबस आँसुओं से ही लिखा जाएगा? उदास साँझ की धुंध में दोनों की परछाइयाँ सूखे पत्तों की तरह काँपती रहती हैं। उधर समंदर के सीने पर रोशनी से सजे जहाजों की कतार गुजरती है, हवा में फिल्मी गीत के टुकड़े उछालते हुए - बंबई से आया मेरा दोस्त, दोस्त को सलाम करो...' सैलानी! गोवा देख रहे हैं। जहाज के सतरंगी काँच की खिड़कियों से, न जाने कौन-सा गोवा, किसका गोवा... हमारावाला तो बिल्कुल नहीं!

दया कुढ़ता है, हमारी आधी संस्कृति तो पुर्तगाली नष्ट कर गए और अब बची हुई आधी ये सैलानी खत्म कर देंगे। वह फिर रूप से पूछता है, क्यों रूप, टी.वी. में जो दिखता है, कैलेंडर में छपता है वह हमारा गोवा है क्या? पूरब का रोम... चल हट! हम दूसरों से ज्यादा हिंदुस्तानी हैं। नाच, अंग्रेजी बोली, रहन-सहन गिने-चुनों का ऊपरी दिखावा होगा, गोवा की आत्मा नहीं। ओढ़ा हुआ अपना थोड़े ही न होता है, अपनाया हुआ होता है।

रूप को दया की बातें अब कुछ-कुछ समझ में आने लगी हैं, और सही भी लगती हैं। उसने औरों की तरह गोवा को रंगीन चश्मे से कहाँ देखा है! महसूस किया है, जीया है - अपनी रूह से। वह भी इसी जमीन की बेटी है - यहाँ की धूप, हवा और बेपनाह ऊर्जा से पली-पुसी...

वह जब कभी पीछे मुड़कर देखती है तो एक बीता हुआ सुंदर कल नजर आता है - रंगीन त्योहारों, उत्सवों और मेलों से भरापूरा। बचपन में देखा हुआ लहराई देवी का मेला याद आता है - सुलगते हुए अंगारों पर निर्भय होकर चलते भक्त... फिर होली के बाद सिगमो का उत्सव। हजारों लोगों की रंगीन जुलूस। औरतें उनके स्वागत में घर की चौखट पर दिया जलाकर रखती थी। लोग घर-घर जाकर नाचते-गाते। बदले में उन्हें हर घर से पाँच नारियल और चावल मिलता था। फिर गणेश पूजा का उत्सव, लगातार ग्यारह दिनों तक। क्या धूम मचती थी। गोवा के लोग जहाँ भी होते हैं इस अवसर पर अपने पूवर्जों के घर में जरूर आते हैं। पूरा कुटुंब एकसाथ मिलकर गणपति बप्पा की पूजा करते हैं। खाना-पीना, मौज-मस्ती, शामों को घुमाट, खंजनी बजाकर आरती। प्रतिमा विर्सजन के दिन 'गणपति बप्पा मोरया' की गगन भेदी गूँज... कितने सारे वाद्य यंत्र ढोल, तासा, मांदल, नगाड़ा... ढालो, जागोर, मेल, गोफ, झेमाडो आदि पारंपरिक नृत्य! उधर ईसाइयों में क्रिसमस की धूम, पड़ोसियों के घर से मिठाइयों की भर-भरकर आती डलिया।

शादी के बाद हर नई दुल्हन की तरह अपने ससुराल में बैठकर वह भी अपने मायके की याद में ओखली में मसाला कूटते हुए गाती थी - म्हजे दोंगरी वो, चित्त माजे मायरी... गाते हुए आँखें पानी में डूबकर दरिया हो जाया करती थीं। उसे पता नहीं चलता था। दरिया होकर बह जाती थी, उसे तब भी पता नहीं चलता था। मायके का अनुराग होता ही ऐसा है।

दिन-दिन रूप भारी होती जा रही है। अब उससे सहज चला-फिरा नहीं जाता। काम करते हुए भी हाँफ जाया करती है। उसका नौंवा महीना चल रहा है। बच्चा अब जल्द आएगा। कुछ ही दिनों की बात है। रूप अँगुलियों पर दिन गिनती है।

उधर मौसम का ताप बढ रहा है। हवा में बारूद की गंध है। लहू में चिनगारी लगी है। पूरी बस्ती, कुनबा परेशान है। उनकी जमीन, उनका पानी, उनके आकाश पर राहु की छाया पड़ गई है। नए कानून, नए नियम नित नए ढंग से उन्हें परेशान कर रहे हैं, उनपर हावी हो रहे है। दया सबको संगठित करने की कोशिश में लगा हुआ है। रोज मीटिंग होती है, पंचायत बैठती है, मशविरे किए जाते हैं। सब चाहते हैं, ये हालात बदले, कोई सूरत निकले, सिलसिले चल पड़े कुछ अच्छा, उन सबके भला होने के।

इन दिनों तरह-तरह की अफवाहों से हवा भी गर्म है। कोई कहता है मोरजी के समुद्र तट के बाद उनके गाँव की बारी है। किसी भी दिन नोटिस आ जायगा और उन्हें अपना गाँव खाली करना पड़ेगा। सुनने में ये भी आया है कि वास्तव में यहाँ एक और पाँच सितारा होटल आनेवाला है। इसीलिए बहाने से गाँव खाली करवाया जा रहा है।

दया जबड़े भींचकर सुनता है। कल कहेंगे मछलियाँ समंदर छोड़कर चली जायँ... बात तो ऐसी ही हुई न! अपने गाँव और अपने दरिया को छोडकर वे क्यों जायँ? पहले-पहल रूप ने उससे पूछा था, तुम इस गाँव में कब से हो। उसने हँसकर जवाब दिया था, जब से यह समंदर यहाँ पर है... रूप खूब हँसी थी उसकी बात सुनकर। मगर सच तो यही है न! जब से वह जन्मा है, इसी आकाश और इसी पानी को देखता आया है। उसकी नसों में इसी दरिया का नमक है, इसी का पानी और स्वाद। जीवन बनकर अविरल बह रहा है, ठाँठे मार रहा है यह समंदर उनकी शिरा, उपशिराओं के संजाल में... यही उनका जीवन, जीवन का आधार और जीवन रेखा है। ये कट गया तो वे क्यों कर जिएँगे! नहीं, वे किसी भी हाल में अपनी जमीन, अपना दरिया नहीं छोड़ेंगे। दया दूसरे मछेरों के साथ रोज धरने पर बैठता है, जलूस निकालता है, नारे लगाता है। मगर सब बेकार!

कल उन्हें सरकारी नोटिस मिल गई है। जल्द से जल्द उन्हें यह गाँव खाली करके जाना पड़ेगा। सरकार ने हजारों रिपोर्टों का हवाला देकर समझाने की कोशिश की है कि उनका यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है। पर्यावरण को भी नुकसान पहुँच रहा है। सारे विशेषज्ञों की भी यही राय है कि इस गाँव को यहाँ से जल्द से जल्द हटा दिया जाय। सभी सन्न! अवाक्! एक-दूसरे का मुँह देख रहे हैं। बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले एनजीओस भी न जाने क्यों अचानक चुप मारकर बैठ गए हैं। उनकी भारी दलीलें, भाषण कहाँ गए? सबने जैसे एक साथ उनके सरोकारों से हाथ धो लिए हैं। दया और

उसके गाँववाले हर दरवाजे पर दस्तक देकर, हर चौखट पर माथा टेककर आखिर निराश हो गए हैं। अब? अब क्या? सबकी आँखों में यही मूक प्रश्न।

दया की हालत अजीब है। उसे लग रहा है वह पागल हो जायगा। दिमाग सोच-सोचकर अंगार बन रहा है। लग रहा है, अंदर कोई ज्वालामुखी धुआँ रहा है। अब कभी भी फट पड़ेगा।

शाम को नंदा मौसी कह गई है, आजकल में बच्चा आ जाएगा। अभी वह ठीक से खुशी भी नहीं मना पाया था कि रघु खबर दे गया था - कल गाँव खाली करवाने की सरकारी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। एक महीने की सरकारी नोटिस पर गाँववालों ने अब तक कोई ध्यान नहीं दिया था। रूप अंदर की कोठरी में हल्के-हल्के कराह रही है। चचेरे भाई की पत्नी उसके पास बैठी है। एक और औरत भी है देखभाल के लिए।

दया के अंदर अजीब-सी सनसनाहट भरी हुई है। उसे लग रहा है, उसके सोचने-समझने की सारी शक्ति खो गई है। वह पागल हो जायगा। देर तक आँगन में चहलकदमी करने के बाद अचानक वह मुड़ा था और अंधकार को चीरते हुए दरिया की ओर चल पड़ा था। आज शाम से ही आसमान पर काले-काले बादल छाने शुरू हो गए थे। हवा में भी ठंडक थी। पड़ोस के दक्षिणी राज्य में मानसून पहुँच चुका था। शायद अब यहाँ भी पहुँचने वाला है।

दरिया के किनारे खड़े होकर दया उफनते हुए पानी को देखता है। चारों तरफ अँधियारा छाया है, पानी का रंग गहरा स्याह! दूर बादलों के कोने से मौसम का एक टुकड़ा नया चाँद दिख रहा है। उसकी हल्की, धुँधली रोशनी में सब कुछ रहस्यमय प्रतीत हो रहा है। दया चुपचाप सब कुछ देख रहा है। कल ये सब छिन जाएगा... उसकी कनपटी में कुछ लगातार धड़क रहा है। एक तेज खिंचाव, जैसे अंदर सब कुछ तड़ककर टूट पड़ना चाहता है। दृष्टि में धुंध और धुआँ, कुछ सुझ नहीं रहा है। ये दरिया, ये जमीन, उनके पुरखे, कूल देवता, ग्राम देवता... क्या सबको छोड़कर जाना पड़ेगा, या ये सब भी उनके साथ बेघर हो जाएँगे? और उनका बच्चा... वह कहाँ पैदा होगा? अपना घर-बार खोकर एक शरणार्थी बनकर इस दुनिया में आएगा?

दया ने चिपको आंदोलन के विषय में लोगों से सुना है। अपने जंगल को कटने से बचाने के लिए औरत, मर्द पेड़ों से चिपक जाते हैं, उनके साथ कट मरने को तैयार हो जाते हैं... दया के अंदर ये बातें गूँज बनकर पैदा होती है, चक्कर काटती हैं - चिपको आंदोलन... सामने दूर समंदर में उनके जाल पड़े हैं। स्याह समंदर के सीने में बड़े-बड़े

मछली पकड़नेवाले जहाजों के धब्बे उभर रहे हैं। वह उनके जालों की तरफ ही बढ़ रहे हैं। थोड़ी ही देर में वे उनके जालों को तोड़कर गुजर जाएँगे। कई बार ऐसा हो चुका है।

दया की नसों में फिर से आग भरने लगती है। नहीं, अब वह ऐसा नहीं होने देगा। वह भी अपनी जमीन, अपने समंदर और जाल से चिपक जायगा, उनके साथ जिएगा या उनके साथ ही मर जायगा... इसके बाद दया ने एक क्षण के लिए अपने गाँव की ओर मुड़कर देखा था और फिर आँखों में कुछ चट्टान-सा अडोल लिए बुदबुदाते हुए हरहराते-गरजते, गहरे काले समंदर में उतर गया था - मेरा इतंजार करना रूप, मैं हमारे और अपने बच्चे के हिस्से का चाँद, समंदर और हवा लेने जा रहा हूँ, अगर लौटूँगा तो उन्हीं के साथ लौटूँगा... उसके आगे के शब्द पानी के ऊँचे उठते रेले में खो गए थे। चारों तरफ एक हाहाकार-सा मचा था, पानी में गहरा उन्माद था। उसी समय तेज हवा के साथ जोर से बिजली कड़की थी और बड़ी-बड़ी बूँदों के साथ बारिश शुरू हो गई थी - मौसम की पहली बारिश... दूर गाँव के पास टीले पर हाथ में लालटेन लिए नंदा मौसी दया को ढूँढ़ते हुए बार-बार आवाज दे रही थी - लगभग उसी समय! रूप को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई थी। बच्चे के आने का समय हो गया था।

दूसरी सुबह पूरा गाँव सरकारी मुलाजिमों, पुलिस कर्मचारियों और लोगों से भरा हुआ था। चारों तरफ अफरा-तफरी मची थी। गाँव खाली करवाने की सरकारी कवायद शुरू हो गई थी।

दूसरी तरफ इस शोरगुल से बहुत दूर किसी निर्जन सागर सीमांत पर एक मछेरे की रक्त-रंजित निष्प्राण देह फटे हुए जाल में लिपटी पड़ी लहरों में उभ-चुभ रही थी। एक टूटी नाव के टुकड़े उसके आसपास बिखड़े पड़े थे शायद कल रात फिर कोई विशाल जहाज मछेरों के बिछे जाल के साथ उस मछेरे को बीच से चीरकर गुजर गया था।

...एक मछेरा अपने दरिया के साथ जी नहीं पा रहा था, इसलिए उसके साथ चिपककर मर गया था, हमेशा उसके साथ रहने के लिए - उसका अभिन्न, अटूट हिस्सा बनकर। उसकी पथराई हुई आँखों में सारा दरिया, जमीन आौर आकाश स्तब्ध होकर पड़ा था। जैसे वे भी अपने मछेरे के साथ मर गए हों! उगते हुए सूरज की किरणों में समंदर का पानी गहरा लाल होकर चमक रहा था - खून की तरह! हवा में टूटे पंखों की-सी बेकल छटपटाहट भरी थी। दूर कहीं समुद्री पक्षी लगातार चीखते फिर रहे थे। न जाने किसी का क्या खो गया था। शायद सारी दुनिया ही!

और इसी गहरी निःस्तब्धता के बीच अचानक गाँव में पुलिस की सायरन फिर से बज उठी थी और उसकी तेज आवाज में एक नवजात शिशु का पहला रुदन खो गया था।

दया के बेटे ने जन्म ले लिया था, अपनी जमीन पर बेगाना बनकर - रोते हुए, रोते रहने के लिए... यह एक अंत की लंबी शुरुआत थी!

उधर हर बात से बेखबर रूप खुशी से झिलमिलाती हुई दया को ढूँढ़ रही थी - उसे अपने प्यार की पहली निशानी दिखाने के लिए!